R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2021-23

मूल्य-7 रुपये, वर्ष-23, अङ्क-5 मई 2023 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (रजि.), अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

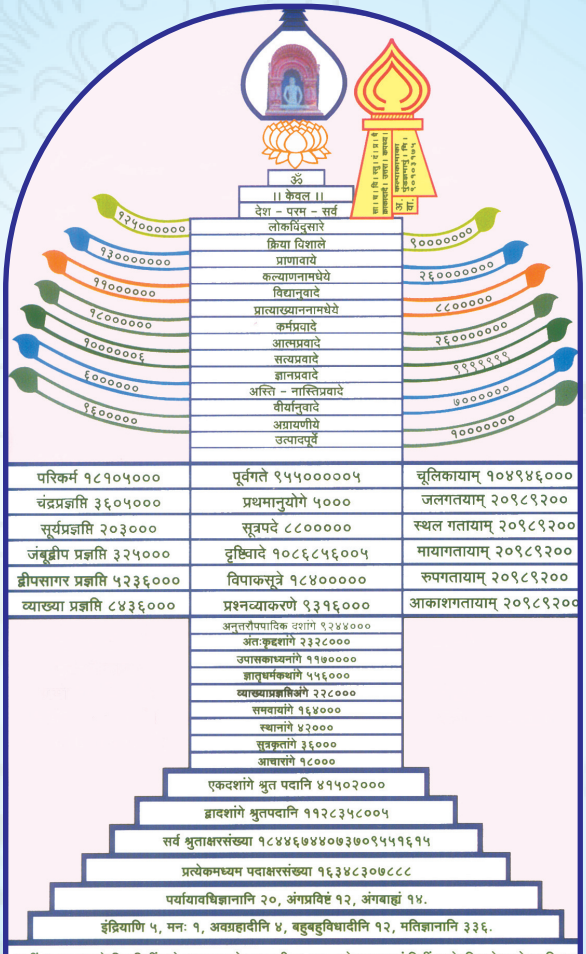

श्रुतस्कन्ध दर्शन

तीर्थधाम चिदायतन

बढ़ते चरण

महावीर जयन्ती के दिन मानस्तम्भ मन्दिर में भक्ति करते हुए।

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (रजि.), अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-23, अङ्क-5 (वी.नि.सं. 2549; वि.सं. 2080) मई 2023

श्रुतपंचमी विशेष

आचार्य श्री धरसेन जो न ग्रन्थ लिखाते

आचार्यश्री धरसेन जो, न ग्रन्थ लिखाते।
हम जैसे बुद्धिहीन, तत्त्व कैसे लहाते॥

अपने अलौकिक ज्ञान से सब भेद जानकर।
बुलवाये-2 मुनिराज की महिमानगर खबर॥
गर वे नहिं मुनिराज युगल ऐसे बुलाते,..... 1

आने से पहले स्वप्न में ही योग्य जानकर।
दो मन्त्र सिद्धि द्वारा फिर, परखा प्रधान कर॥
उत्तीर्ण होकर योग्यता, गर वे न दिखाते,..... 2

पश्चात् पढ़ाया उन्हें, निज शिष्य मानकर।
उनने भी ग्रन्थ लिखा, गुरु उपकार मानकर॥
करुणा निधान मुनि नहिं, गर ग्रन्थ रचाते,..... 3

श्री पुष्पदन्त सूरि प्रथम खण्ड बनाया।
अभिप्राय जानने को, भूतबली पै पढ़ाया॥
यदि वे नहिं उस ग्रन्थ का, प्रारम्भ कराते,..... 4

उनने प्रसन्न होय, शेष ग्रन्थ रचाया।
श्री ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी को, पूर्ण कराया॥
गर वे नहिं इस ग्रंथ को सम्पूर्ण कराते,..... 5

ग्रन्थाधिराज की हुई थी आज ही पूजा।
इस काल में इससे बड़ा न काम है दूजा॥
करुणा सागर गुरु अगर ऐसा न कराते..... 6

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
स्व. श्री पवन जैन, अलीगढ़

सम्पादक
डॉ. जयन्तीलाल जैन,
मङ्गलायतन विश्वविद्यालय

सह सम्पादक
पण्डित अभिषेक शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, मङ्गलायतन

निवेदन

अगर आपको पत्रिका प्राप्त हो रही है तो कृपया सूचित करें। जिससे आपको पत्रिका लगातार मिलती रहे। अगर आप हमें सूचित नहीं करते हैं तो हम समझेंगे कि आपको पत्रिका प्राप्त नहीं हो रही है। अत: आगे पत्रिका नहीं भेजी जायेगी।

सम्पर्कसूत्र–
पण्डित अभिषेक शास्त्री, मङ्गलायतन
9997996346 (whatsapp)
Email : info@mangalayatan.com

क्या – कहाँ

देशव्रतोद्योतनम्	5
गुरु भक्ति	12
स्वानुभूतिदर्शन : बहिनश्री की...	13
धन्य मुनिदशा	14
श्री समयसार नाटक	20
आचार्य समन्तभद्र.....	24
हमारे गौरवशाली महापुरुष	26
प्रेरक प्रसंग	27
जिस प्रकार—उसी प्रकार	28
समाचार-दर्शन	29

शुल्क :
एक प्रति : 07.00 ₹
आजीवन (15 वर्ष) : 1000.00 ₹

श्री पद्मनंदी आचार्य कृत श्री पद्मनंदी पंचविंशतिका के
देशव्रतोद्यन नामक अधिकार पर सत्पुरुषश्री कानजीस्वामी का प्रवचन

देशव्रतोद्योतनम्

(प्र० भाद्रपद सुदी 1, गुरुवार, ता० 18-8-55)

गाथा-१३

कृत्वा कार्यशतानि पापबहुलान्याश्रित्य खेदं परं।
भ्रान्त्वा वारिधि मेखलां वसुमतीं दुखेन यध्वार्जितम्॥
तत्पुत्रादपि जीवितादपि धनं प्रेमोऽस्य पन्था शुभो।
दानं तेन च दीयतामिदमहो नान्येन तत्सद्गति॥१३॥

अज्ञानी को पुत्र और जीवन की अपेक्षा लक्ष्मी अधिक प्रिय लगती है।

अहो! यह मनुष्य गृहस्थाश्रम में सैकड़ों पाप—हिंसा, झूठ, चोरी, विषय भोग आदि के पाप भाव करता है। वह प्रात:काल से संध्या तक पाप कर्म कर खेद खिन्न होता है। धनार्जन के लिए वह भूख, प्यास सहता है, अपना घर छोड़कर बम्बई, कलकत्ता, रंगून, अफ्रीका आदि स्थानों पर जाता है। **व्यापार का भाव पापभाव है। यह मनुष्य सुबह से शाम तक पाप का भाव करता रहता है। स्त्री, पुत्र आदि के पोषण में, सगाई-व्याह करने में, गहना, कपड़ा बनाने में, इत्यादि ऐसे ही अन्य कार्यों में पाप भाव करता रहता है।** लड़के-लड़कियों के विवाह में खर्च करना भी ऐसे ही कार्यों में शामिल है जिनमें पाप होता है और जिनके करने से इस जीव को दु:ख होता है। **बीमार होते हुए भी यह मनुष्य दुकान पर जाता है किन्तु धर्म चर्चा सुनने के लिए नहीं जाता।** वह दमा का रोग होते हुए भी दुकान जाता है, कष्ट सहन करता है और अगर पूर्व पुण्य के योग से लक्ष्मी मिल जाती है तो उसे पुत्र से भी अधिक प्रिय समझता है। एक लड़के को मैनेन्जाइटीस (रोग) हुआ और निदान कराने पर डाक्टरों ने बताया कि इसकी दवा में दस हजार रुपये खर्च होंगे किन्तु रुपयों का लोभ करता है और लड़के के मरने की परवाह नहीं करता। अपने शरीर में भी बीमारी हो जाये तो भी वह एक पैसा खर्च नहीं करना चाहता। उसे लक्ष्मी से सबसे अधिक प्रेम है, उसे जिन्दगी से भी

अधिक प्रिय मानता है। ग्राहकों से, पैसे के कारण उसे इतना अधिक प्रेम है कि प्राणों को कुछ नहीं समझता।

लक्ष्मी का उपयोग दान में किया जाये तभी उसकी सार्थकता है।

जीवन से भी प्यारी लक्ष्मी का उपयोग दान में किया जाये, तभी उसकी सफलता और सार्थकता है। जंगल में निवास करनेवाले मुनि कहते हैं कि लक्ष्मी को खर्च करने का उत्तम मार्ग तो दान मार्ग है। जिसे दान करने का राग नहीं आवे, उसको वास्तविक दृष्टि प्राप्त नहीं हुई। चन्द्रकान्त -मणि का, चन्द्रकिरणों के स्पर्श बिना, सही मूल्यांकन नहीं किया जा सकता क्योंकि उन्हीं के स्पर्श से चन्द्रकान्तमणि में शीतल जल झरता है। इसी प्रकार लक्ष्मी के पत्थरों की—चांदी, सोने, सिक्के, जवाहरात की सफलता क्या ? राग कम कर उसका दान किया जाये, तभी लक्ष्मी की सफलता है। व्यापार में खूब ध्यान रखता है कि कोई लूट न ले जाये, कोई चोरी न कर ले, ये सब भाव पापभाव हैं। इसलिए लक्ष्मी के उपयोग का मार्ग दान है, इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। जिसे लक्ष्मी का उपयोग दान में करने का भाव नहीं आता, वह धर्मी नहीं है। प्रत्येक दिन ऐसा भाव करना चाहिए। दान का भाव नहीं आवे तो गृहस्थाश्रम निष्फल है। अनेक पाप और दुःखों से प्राप्त लक्ष्मी, पुत्र और जीवन से भी प्रिय है, ऐसी लक्ष्मी का सदुपयोग दान में ही है। जिसे आत्मस्वभाव की दृष्टि है, उसे धर्मात्मा की सहायता करने का भाव आता है। उन्हें लक्ष्मी का उपयोग—दान करने का भाव नहीं आवे तो आत्मा की रुचि नहीं है, ऐसा जानना।

दान करने का उपदेश सुनकर कोमल जीव, राग कम कर दान देते हैं।

दान का उपदेश लोभी प्राणियों के उद्धार के लिए है। चमेली के फूल पर जब भ्रमर गुंजार करता हुआ आता है तो फूल विकसित हो जाता है किंतु लकड़ी का फूल भ्रमर के गुंजार से नहीं खिलता। पाप कार्यों द्वारा लक्ष्मी मिली है, उसे दान में लगाने का उपदेश भ्रमर गुंजार सदृश है, वह किसे सुनाई पड़ता है ? जिनका हृदय लकड़ी के फूल की तरह है, उन पर दान के

उपदेश का कोई असर नहीं पड़ता। चन्द्रमा की किरणों से कुमोदनी ही खिलती है किन्तु संगमरमर की कुमोदनी नहीं खिलती। इसी प्रकार दान का राग कम करने का उपदेशरूपी गुंजार किसे लागू होती है? जिसका हृदय लकड़ी या पत्थर के कमल की तरह नहीं होगा, उसी को यह उपदेश प्रभावित करता है। लकड़ी के फूल की तरह हृदयवालों को यह उपदेश प्रभावित नहीं करता। लोभरूपी कन्दरा में पड़े हुए लोभी-कंजूस के लिए यह उपदेश है, किन्तु फूल जैसे कोमल हृदयवालों को ही यह लागू पड़ता है।

राग के अभावस्वरूप आत्मा की दृष्टि रखनेवाला लक्ष्मी का सदुपयोग दान में करता है।

धन खर्च करने का मार्ग दान है। यहाँ स्त्री, लड़का-लड़की के लिए खर्च करने की बात नहीं है। जगत के प्राणियों को पैसा मिला है, उसमें राग घटाकर धर्म की प्रभावना करने का राग धर्मात्मा को आता है, वहाँ लक्ष्मी का सदुपयोग व्यवहार से कहा है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई उत्तम मार्ग नहीं है। जिसे राग के अभावस्वरूप आत्मा पर दृष्टि है, उसे राग कम कर दान का भाव आए बिना नहीं रहता, इसलिये सज्जन पुरुषों को दान मार्ग में पैसा लगाने में लोभ नहीं करना चाहिये। एक पैसा भी साथ नहीं जायेगा, सब यहीं पड़ा रहेगा। जितनी लक्ष्मी दान में देगा, उतनी ही तेरी है, बाकी की लक्ष्मी का तो तू रक्षक मात्र है। पूर्ण शुद्धता प्रकट करने की आकांक्षावाले और राग का सर्वथा अभाव करने के इच्छुक राग कम किये बिना नहीं रहेंगे। **जिस घर में दानादिक की क्रिया नहीं होती, वह घर गहरी खाई में डूब जायेगा।** भानपूर्वक शुभराग का दान किया होगा तो संस्कार बने रहेंगे। ''अहो! मैं अभी तक पूर्ण नहीं हुआ, इसलिये यह शुभराग आता है। अब मैं राग नष्टकर पूर्ण होऊंगा, इसलिये सज्जन पुरुषों को दान में पैसा लगाना चाहिये।'' ऐसी भावना श्रेयस्कर है।

श्रावक, धर्म की प्रभावना के लिये दान करता है।

गृहस्थी, श्रावक और धर्मी की दृष्टि कैसी होती है, धर्म दृष्टि सहित

श्रावकत्व कैसे सुशोभित होता है ? यह प्रकरण चल रहा है। यह व्रत का अधिकार है, इसमें दान की चर्चा है। धर्मात्मा तो हो किन्तु अपनी लक्ष्मी के प्रमाण में दान न करे तो वह लोभी है। धर्मी जीव के व्रत का सच्चा विकास होता है। जिनेन्द्र भगवान की पूजा, गुरु सेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान—ये छह आवश्यक श्रावक को हमेशा करने चाहिये, अगर वह हमेशा नहीं करे तो वह श्रावक कहलाने योग्य नहीं है। एक दिन शरीर नष्ट हो जायेगा, संयोगजनित वस्तुएँ हवा की तरह उड़ जायेंगी, अनंत काल में मनुष्यभव मिला है, उसमें मुनि धर्म ग्रहण नहीं कर सके तो गृहस्थ और ब्रह्मचारी रहना चाहिए। इस गाथा में कहा है कि धर्मप्रमी को देव-गुरु-शास्त्र के प्रति अनुराग होता ही है, उनके प्रभावनार्थ अपने पैसे का सदुपयोग करता ही है। सांसारिक कार्यों में अपने धन का उपयोग करना पाप है, दान में खर्च करना पुण्य है। धर्मी को सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की शोभा और प्रभावना का भाव आये बिना नहीं रहता। शरीर की शोभा के लिए खर्च करते हैं, उन्हें देव-गुरु-शास्त्र की प्रभावना के लिए भी दान देना चाहिए।

गाथा-१४

दानेनैव गृहस्थता गुणवती लोकद्वयोद्योतिका।
नैव स्थाननु तद्विनाधनवतो लोक,यध्वंसकृत॥
दुर्व्यापारशतेषु सत्सु गृहिणः पापं यदुत्पद्यते।
तन्नाशाय शशांकशुभ्रयशसे दानं न चात्यत्परम्॥१४॥

दान से श्रावक की शोभा बढ़ती है और आत्मीय व लौकिक यश प्राप्त होता है।

कंजूस जीव लोभरूपी खाई में गिरे हुए हैं। उन्हें धर्म की तरफ आकर्षित करने के लिए आचार्य कहते हैं कि धर्मी मनुष्यों का गृहस्थपना दान से ही सुशोभित होता है। अपने पुत्र-पुत्री के विवाह के लिए सबकुछ करता है, तब देव-गुरु-शास्त्र के प्रति प्रेम क्यों नहीं आता ? (यह अधिकार श्रावक धर्म का प्रकाशन करता है) जिसे धर्म की तरफ दृष्टि हुई है, उसकी

शोभा देव-गुरु-शास्त्र और धर्मात्मा के लिए दान देने से बढ़ती है। किंतु दान बिना गृहस्थपना नष्ट हो जाता है। गृहस्थी, धनार्जन के लिए अनेक प्रकार के छल-कपट करता है किंतु पुण्य का उदय हो, तभी पैसा मिलता है। व्यापार में पाप किया जाता है, स्त्री-संतान के लिए धन कमाकर रख जाना दान नहीं है किंतु पापभाव है क्योंकि वे भाव पापवृत्ति सहित होते हैं। उस पाप का नाश करने के लिए तथा चन्द्रमा समान यश की प्राप्ति के लिए दान करना चाहिए। सत्पात्र को दान देने से आत्मीय और लौकिक यश मिलता है, इसलिए भव्य जीवों का कर्तव्य है कि वे योग्य पात्रों को दान देते रहें। यह सबकुछ मुनि अपने स्वार्थ या प्रयोजन के लिए नहीं कहते, किन्तु श्रावक के शुभराग के लिए कहते हैं। अपनी शक्ति अनुसार दान देना चाहिए। धर्मात्मा को धर्म प्रेम के कारण ऐसा शुभराग आये बिना नहीं रहता।

गाथा - १५

पात्राणामुपयोगी यत्किल धनं तद्धीमतां मन्यते।
येनानंतगुणं परत्र सुखदं व्यावर्तते तत्पुनः॥
यद्भोगाय गतं पुनर्धनवतस्तन्नष्टमेव ध्रुवम्।
सर्वासामिति सम्पदां गृहवतां दानं प्रधानं फलम्॥१५॥

लक्ष्मी का दान में उपयोग किया जाये, तभी वह सफल है; सांसारिक कार्यों में व्यय की हुई लक्ष्मी नष्ट हो जाती है।

जिस धन का उपयोग उत्तमादि सत्पात्रों के दान में किया जाता है, उसे ही विद्वान उत्तम समझते हैं। व्रत, तप, धर्म की शोभा-प्रभावना में लगाया हुआ धन अच्छा समझा जाता है। धर्म की वृद्धि में उसका लक्ष्य है, वह परलोक में सुख देनेवाला है। धर्म के प्रेम में राग कम करके दान किया जाये तो उसका दान-दाता को महान फल मिलता है। यद्यपि उसे उस फल की इच्छा नहीं है किंतु उसे वह सहज ही मिल जाता है। जिस प्रकार बीज जमीन में बोया जाये तो ओर उससे बहुत-सा अनाज पैदा होता है; उसी प्रकार धर्मात्मा गुप्तदान में हजारों रुपये खर्च करता है, उसके फलस्वरूप

उसे उत्तम पद मिलता है। सम्यक्त्वी को तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि उच्च पद मिलते हैं। उन्हें आत्मा के प्रेमसहित राग हुआ है। आत्मा अनन्त गुणों का पिण्ड है, उसकी रुचिपूर्वक देव-गुरु-शास्त्र के प्रति जिसे प्रेम हुआ, उसे सर्वज्ञदेव, जिनके आत्मा के अनंत गुण विकसित हो गये हैं, उनके प्रति तथा उनकी प्रतिमा के प्रति प्रेम आता ही है, जिसका उसे अनंतगुना फल मिलता है।

मुनि को बारम्बार छठे-सातवें गुणस्थान की भूमिका आती है; उन्होंने ताड़ पत्रों पर सींक द्वारा छिद्र करके शास्त्र लिखे हैं। मुनि तो लिखकर चले जाते हैं, पीछे श्रावक उन्हें सुरक्षित रखते हैं।

जीव विचार करते हैं कि ''हमारे पास अभी थोड़ी-सी पूंजी हो, इसमें से दान के लिए कैसे खर्च करें ? हाँ, ज्यादा हो जाये तो खर्च कर सकते हैं।'' उसे कहते हैं कि भाई, सांसारिक कार्यों में खर्च करते हो और धर्म के लिए नहीं खर्च करो तो धर्मी नहीं हो। यह मनुष्य यूरोप आदि देशों में भ्रमण करता है, तब वहाँ अनेक प्रकार के भोग-विलासों में पैसा खर्च करता है; किन्तु इसप्रकार उसकी लक्ष्मी का नाश ही होता है, और पूर्व पुण्यों का भी जल्दी ही अन्त आ जाता है। इसलिए समझना चाहिए कि गृहस्थ की सब सम्पदा का प्रधान फल एक दान ही है। स्त्री, पुत्रादि के लिए खर्च किया हुआ धन भी नष्ट ही होता है और कूड़े में जाता है क्योंकि उसका कोई फल नहीं है और न कोई नवीन पुण्य का बंध होता है, जिसके उदय में आने पर फिर धन मिले। यह है वस्तु स्वरूप।

प्रश्न—फल तो भावों का है न ?

समाधान—लड़के-लड़की के लिये खर्च करता है, वहाँ तो भाव ही लेकर नहीं बैठ जाता। कोई जीव अन्तिम समय में कहे कि मुझे पाँच लाख रुपए खर्च करने हैं तो लड़का टालने की इच्छा से कहता है कि पिताजी! आज तो पंचमी है, कल छठ को खर्च करना किन्तु उनके खर्च करने के लिए छठ होनी ही नहीं, वे तो आज ही कूच कर जाएंगे। लोभी जीवों,

देखो! स्त्री-पुत्र के लिये जो धन रखा जाता है, वह लड्डू को विष्ठा में डालने के समान है।

भावार्थ— गृहस्थ सदा अनेक प्रकार के कार्यों में पैसा खर्च करता है, वह सब पैसा कूड़े में डालने के समान है। किन्तु जिस धन का उत्तम आदि पात्रों में तथा धर्म की शोभा में व्यय किया जाता है, वह उत्तम है और परभव में अनेक प्रकार के सुखों का कारण है। उस दाता को तीर्थंकर, बलदेव आदि का उत्तम पद मिलता है। धर्मात्मा को फल की इच्छा नहीं है; जो मांगता नहीं है, उसे वह पद अपने आप मिल जाता है। जो धन, भोग-विलास आदि हलके कार्यों में तथा विभिन्न मिठाईयाँ खाने में, वस्त्राभूषण, मोटरादि वाहनों में खर्च किया जाता है, वह धन सर्वथा नष्ट हो जाता है तथा उसके फलस्वरूप परलोक में किसी प्रकार का सुख नहीं मिलता। स्त्री, पुत्र-पुत्री, काका-काकी, भतीजा-भतीजी, बहन-बेटी आदि के लिए खर्च करना पाप है क्योंकि वह सब अधिक राग का परिणाम है, वह खर्च किया हुआ धन सर्वथा नष्ट होता है, उसका परलोक में कोई पुण्य फल नहीं मिलता, क्योंकि समस्त सम्पदा का प्रधान फल दान है। इसलिए धर्मात्मा श्रावकों को सर्वदा उत्तमादि पात्रों को दान देकर प्राप्त हुये धन का सदुपयोग करना चाहिये। आचार्य पुनः दान की महिमा बतलाते हैं:—

गाथा-१६

पुत्रो राज्यमशेषमर्थिषु धनं दत्त्वाभयं प्राणिषु।
प्राप्ता नित्य सुखास्पदं सुतपसा मोक्षं पुरा पार्थिवा॥
मोक्षस्यापि भवेत्ततः प्रथम तो दानं निदानं बुधैः।
शक्त्या देयमिदं सदा तिचपले द्रव्ये तथा जीविते॥१६॥

जीवन और लक्ष्मी को विनाशक जानकर यथाशक्ति दान देना चाहिए।

भूतकाल में बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं ने अपने पुत्र को राज्य देकर, याचकों को दान देकर, सब प्राणियों को अभयदान देकर मुनिधर्म स्वीकार किया और अन्त में अविनाशी सुख प्राप्त किया है; इसलिए मोक्ष का प्रथम

कारण दान है, इसलिए धर्मी को दान का भाव आये बिना नहीं रहता। विद्वानों को जानना चाहिये कि धन और जीवन पानी के बुलबुले के समान हैं; धन को रखना भी चाहे तो रहेगा नहीं।

''नहीं था उन्हें मिला, और जिन्हें मिला था उनका गया।''

जिस प्रकार पानी का बुलबुला नष्ट हो जाता है; उसी प्रकार धन और जीवन अपने आप नष्ट हो जाते हैं। इनको विनाशीक समझकर शक्ति के अनुसार धर्म की वृद्धि के लिए उत्तम पात्रादि को दान देना चाहिए। **क्रमशः**

साभार : आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 14, अंक 2-3

गुरु भक्ति

(तर्ज : परम गुरु बरसत ज्ञान झरी...)

निरख गुरु आनंद झरन झरी।
विषय कषाय शमन दमन, पीरा अपनी हरी ॥टेक॥
है अचेल वे अंतरमन से, पर से दृष्टि हटी,
चक्री भी नत है फिर हम क्या, तुम चरनन ही डरे ॥1॥
निरख गुरु.....
स्थिर वन में मूरति जैसे तीन चौकड़ी झरी,
मार जाए या सुमन वृष्टि हो समता मुद्राधरी ॥2॥
निरख गुरु.....
अंतर सन्मुख जमकर मुनिवर क्षायिक श्रेणी चढ़ी,
हम सब हैं उन गुरु के दास अब जिन मुक्ति वरी ॥3॥
निरख गुरु.....
सिद्धन के लघुनंदन थे वे, अब स्व मुक्ति वरी,
दादा, परदादा सम राजे, कथनी दुःख की हरी ॥4॥
निरख गुरु.....

मङ्गलार्थी तेजस जैन, कक्षा 10वीं

स्वानुभूतिदर्शन : बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

प्रश्न : पूज्य गुरुदेवश्री के वचनामृत में 'ॐ सहज चिदानन्द' आता है, तो उसमें क्या कहना चाहते हैं ?

समाधान— 'ॐ' भगवान की वाणी है। ॐ ध्वनि निरक्षरी होती है। गुरुदेव को जिनवाणी के प्रति अत्यन्त प्रेम था इसलिए उनको 'ॐ सहज चिदानन्द' ऐसा (सहज) आता था। आत्मा सहज चित्स्वरूप आनन्दस्वरूप है; तू ऐसे सहज चिदानन्द आत्मा को पहिचान। वह किससे पहिचाना जाये ? इस ॐ से उसको पहिचाना जाता है—भगवान की वाणी से आत्मा पहिचानने में आता है। गुरुदेव को ॐ का भास भी हुआ था।

मुमुक्षु—सहज चिदानन्द आत्मा की पहिचान ॐकार ध्वनि द्वारा होती है ?

बहिनश्री—आत्मा सहज चिदानन्द है, वह ॐकार ध्वनि द्वारा पहिचाना जाता है। भगवान आत्मा सहज चिदानन्द है, उसे भगवान की वाणी पहिचान कराती है, ऐसा उपादान-निमित्त का सम्बन्ध है। ॐ को पहिचाने वह आत्मा को पहिचाने। ॐकार द्वारा सब पहिचाना जाता है। जीव अनादि काल से परिभ्रमण कर रहा है, उसमें साक्षात् भगवान मिले, भगवान की वाणी मिले अथवा गुरु की वाणी मिले तब आत्मा को पहिचाने—ऐसा उपादान-निमित्त का सम्बन्ध है अर्थात् ऐसा वाणी के साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। गुरुदेव को जिनवाणी के प्रति कोई विशिष्ट जाति का प्रेम था; उन्हें अन्तर से सहज श्रुत का प्रेम था।

मुमुक्षु—गुरुदेव पूर्वभव में सुनकर आये थे न ?

बहिनश्री—हाँ, वे स्वयं पूर्वभव में सुनकर आये थे। एक अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग (शास्त्र में) आता है, ऐसा श्रुत का ज्ञान गुरुदेव को अन्दर में से आता था। उन्हें जिनवाणी के प्रति इतना बहुमान था कि वाणी का अर्थ करते

शेष पृष्ठ 19 पर.....

धन्य मुनिदशा

[श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन से]

समयसार नाटक में यह मंगलाचरण चल रहा है। यह पाँचवाँ पद है। पण्डित बनारसीदासजी समयसार नाटक की रचना करने से पूर्व साधु का स्मरण करके स्तुति करते हैं। साधुपना कैसा होता है, उसका वर्णन करते हैं:—

ज्ञानकौ उजागर सहज-सुखसागर,
सुगुन-रत्नाकर विराग-रस भर्यो है।
सरनकी रीति हरै, मरनकौ न भै करै,
करनसौं पीठि दे चरन अनुसर्यो है॥
धरमकौ मंडन भरमकौ विहंडन है,
परम नमन ह्वैकै करमसौं लर्यो है।
ऐसौ मुनिराज भुवलोकमें विराजमान,
निरखि बनारसी नमस्कार कर्यो है॥५॥

आत्मा ज्ञानानन्द है, उसका प्रकाश-उद्योत करनेवाले साधु हैं। जो चैतन्यसागर है ज्ञायकस्वभावभावी है, उसका प्रकाशन-उद्योतन करनेवाले को साधु कहते हैं। चैतन्यभगवान पूर्ण ज्ञानस्वभाव से भरपूर है, वह ज्ञान का प्रकाशक है। साधु उसे कहते हैं जो चैतन्य के पूर ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा को प्रकाशित करे, विकसित करे, उद्योत करे अर्थात् जो अन्तर में एकाग्र होकर ज्ञान को विशेष उज्ज्वलता है, निर्मल करता है। आत्मा स्वाभाविक आनन्द का सागर है, साधु उसका वेदन-अनुभवन करते हैं। संसारी उसे कहते हैं जो राग-द्वेष-अज्ञान का वेदन करे, पुण्य-पाप के विकारी भाव का वेदन करे। संसारी प्राणी दु:ख के सागर में डूबा है; आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा की उसे खबर नहीं है। जिसकी वर्तमान पर्याय में आनन्दस्वरूप आत्मा उछल रहा है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि गुणों का सागर लहरा रहा है, उसे साधु कहते हैं।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् शान्ति, वीतरागता, स्वच्छता आदि जो शक्तियाँ हैं, उन्हें साधु ने प्रगट किया है। अनन्त चैतन्यरत्नाकर भगवान आत्मा में से उसने सम्यग्दर्शनादि पर्यायोंरूपी रत्न प्रगट किये हैं। साधु-सन्त पर से उदासीनतारूप वैराग्यरस से भरपूर हैं। इन्द्रानी आये तब भी जो विचलित न हों—ऐसे आनन्दरस, वीतरागरस में निमग्न हैं। आत्मा अपरिमित—अमर्यादित गुणों का सागर है, उसकी जिन्होंने शरण ली, उन्हें बाह्य शरण की आवश्यकता नहीं पड़ती। गृहस्थ तो जिस-तिसकी शरण लेते हैं; नौकरी के लिये पैसेवालों की शरण में जाते हैं; किन्तु साधु को बाह्य में किसी की शरण नहीं है; बाह्य में किसी आश्रय की उन्हें इच्छा नहीं होती। जिनके आनन्द का विकास हुआ है; कमल की भाँति जिन्हें अनन्त आनन्द एवं गुणों से विकसित आत्मा की शरण प्रगट हुई है, जिन्हें अन्तरस्वरूप की शरण प्राप्त हुई है, अनन्त गुणों का भण्डार खुल गया है, उन्हें अपने स्वभाव के सिवा अन्य कोई शरणभूत नहीं है—अन्य किसी की शरण में वे नहीं जाते। उन्हें मरण का भय नहीं होता। यह शरीर तो परवस्तु है, उसके साथ मुझे कुछ लेना-देना नहीं है, वह तो जड़ है, मिट्टी है, जगत के अजीवतत्त्व जड़रूप से शरीर के रूप में विद्यमान हैं, उनकी स्थिति पूर्ण हो उससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।

आत्मानुभवी श्रीमद् राजचन्द्र गृहस्थाश्रम में साधुपद की भावना भाते हुए कहते हैं कि—सिंह आये और शरीर को ले जाये तो मुझे वह नहीं चाहिए, उसे जरूरत हो तो भले ले जाये, वह तो मेरा मित्र है। समतारस में झूलते हुए सन्तों की दशा ऐसी होती है; वह दशा हमें कब प्राप्त होगी—ऐसी भावना धर्मी जीव गृहस्थाश्रम में भाता है। यहाँ तो कहते हैं कि—जिसे ऐसी साक्षात् दशा प्रगट हुई है, मरण का जिसे भय नहीं, पाँच इन्द्रियों से जो विमुख हो गया है, आनन्द के नाथ भगवान आत्मा की रमणता निरन्तर वर्तती है, उसे साधु कहते हैं।

आत्मा की शान्तिरूपी धर्म को सुशोभित करनेवाले साधु हैं। जो धर्म

के शृंगार हैं, चारित्ररूपी धर्म को जिन्होंने शोभायमान किया है। भ्रमणा का जो नाश करनेवाले हैं। पर में सुखबुद्धि, आश्रयबुद्धि जिनको छूट गई है और अकषायस्वभाव पूर्व कर्म के साथ जिन्होंने युद्ध छेड़ा है; जो विकल्प को उत्पन्न नहीं होने देते; अन्तर में जिनकी भगवान आत्मा से भेंट हुई है और उसकी शरण में जाकर राग तथा कर्म से युद्ध छेड़कर उसमें विजय प्राप्त की है—ऐसे साधु होते हैं। बाह्य में वे नग्न-दिगम्बर और अन्तर में उपरोक्त गुणों से विभूषित होते हैं।

मनुष्य होना कठिन है, तो साधु कहाँ से होय।
साधु हुआ तो सिद्ध हुआ, कहनी न रही कोय॥

जिसकी अभ्यन्तरदशा अतीन्द्रिय आनन्द एवं शान्ति से उछल रही है ऐसे मुनिराज इस पृथ्वी पर विराजमान हैं। ऐसे सन्त-मुनि को अन्तर में देखकर मैं (बनारसीदास) नमस्कार करता हूँ।

अब, भले ही गृहस्थाश्रम में हों, किन्तु सम्यक्त्वी कैसे होते हैं—धर्म की प्रारम्भिक दशावाले, चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव कैसे होते हैं, उनका वर्णन करते हैं:—

भेदविज्ञान जाग्यौ जिन्हके घट,
सीतल चित्त भयौ जिम चंदन।
केलि करैं सिवमारग मैं,
जग माहिं जिनेसुरके लघु नंदन॥
सत्य सरूप सदा जिन्हकैं,
प्रगट्यौ अवदात मिथ्यात-निकंदन।
सांतदसा तिन्हकी पहिचानि,
करै कर जोरि बनारसि वंदन॥6॥

सम्यग्दृष्टि भरत चक्रवर्ती को गृहस्थाश्रम में 96 हजार रानियाँ, 96 करोड़ पैदल सेना थी, किन्तु यह मैं नहीं हूँ—ऐसी अन्तर में भिन्नता की प्रतीति है, भेदविज्ञान है। सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा सो मैं और दया-दान-

व्रतादि के विकल्प से लेकर राजपाट, रानियाँ वे सब मुझसे भिन्न हैं, वे मेरे नहीं हैं, उनमें मैं नहीं हूँ—ऐसी सम्यग्दृष्टि की दशा गृहस्थाश्रम में भी होती है। चेतन और जड़ को भिन्न जाना है ? निजस्वरूप भगवान चैतन्य-ज्योति तथा पुण्य-पाप का विकल्प एवं विकारी राग—ऐसे स्व और पर को जिसने अन्तर में भिन्न जाना है, उसे सम्यक्त्वी अथवा धर्म का प्रारम्भवाला कहते हैं।

अनादि से राग और शरीर को अपना माना था, परन्तु सम्यक्त्वी को भेदविज्ञान प्रगट होने पर शरीर-वाणी-मन, वे सब पर वस्तु हैं, मेरे अस्तित्व में उनकी गन्ध नहीं है और उनके अस्तित्व में मेरी—इस प्रकार अन्तर में भिन्न अनुभव करते हैं। ९६ हजार रानियाँ होने पर भी सम्यक्त्वी चक्रवर्ती को अन्तर में भान है—प्रतीति है कि अरे, हम यहाँ कहाँ हैं ! न यह सब मुझमें हैं और न मैं इनमें; यह कोई मेरे, कारण नहीं आये हैं; यह अपने से आकर, अपने कारण अपने में रहे हैं। मेरा और इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्मात्मा ने अन्तर में भेदज्ञान द्वारा स्व और पर को इस प्रकार अलग-अलग कर दिया है, जैसे करवत एक लकड़ी के दो टुकड़े कर देती है। एक ओर पूर्णानन्द का नाथ आत्मा तथा दूसरी ओर दया-दानादि के विकल्प। देखो, यह सम्यग्दृष्टि की प्रारम्भिक दशा !

जिनका मन चन्दन के समान शीतल है, कषायों का आताप जिनके नहीं है। पुण्य-पाप की वृत्तियाँ उठती हैं, वह तो आताप है, कषाय की अग्नि है। भेदविज्ञान हुआ है इसलिए कषाय के आलाप से धर्मी जीव भिन्न है। सम्यग्ज्ञान के साथ चैतन्य में से शीतलता प्रगट हुई है और निज-पर का विवेक होने से मोक्षमार्ग में केलि करते हैं—आनन्द करते हैं। संसार में दिखायी देते हैं, किन्तु वे अरिहन्तदेव के लघुननदन हैं, छोटे पुत्र हैं। अब उन्हें मोक्ष का उत्तराधिकार मिलने में देर नहीं है।

जिन्हें अन्तर में केवलज्ञान प्रगट नहीं हुआ है, किन्तु प्रगट होने की तैयारी—साधनावाले हैं, उन्हें सर्वज्ञ का पुत्र कहा है, क्योंकि सर्वज्ञ की

पूर्णदशा का पद—उत्तराधिकार अब अन्तर में से मिलना है, कुछ ही काल में भेदज्ञानी जीव केवलज्ञान प्राप्त करके परमात्मा होने की तैयारी में है।

सम्यग्दर्शन अर्थात् सत्यदर्शन। जैसा निर्विकारी रागरहित आत्मा है, वैसी अंतरदर्शन में प्रतीति हुई है; सम्यग्दर्शन मिथ्यात्व का नाश करनेवाला है।—ऐसी शुद्ध दशा जिनके प्रगट हुई है, उन सम्यग्दृष्टि जीवों की आनन्दमय अवस्था का निश्चय करके पण्डित बनारसीदास हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं ॥6॥

फिर कहते हैं कि—

स्वारथके साचे परमारथके साचे चित्त,
साचे-साचे बैन कहैं साचे जैनमती हैं।
काहूके विरुद्धि नाहि परजायबुद्धि नाहि,
आतमगवेषी न गृहस्थ हैं न जती हैं॥
सिद्धि रिद्धि वृद्धि दीसै घटमें प्रगट सदा,
अंतरकी लच्छिसौं अजाची लच्छपती हैं।
दास भगवन्तके उदास रहैं जगतसौं,
सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं॥7॥

अपना स्व=आत्मा, उसका सच्चा ज्ञानी यह भेदज्ञानी—सम्यक्त्वी है। पुण्य-पाप के तत्त्व से भिन्न जो भगवान आत्मा, ऐसे स्वपदार्थ का वह सच्चा ज्ञानी हुआ है। स्व पदार्थ की पहिचान करके वह ज्ञानी हुआ है। मनुष्य में, देव में, नारकी में, पशु में—ऐसी चारों गति में सम्यग्दृष्टि होते हैं। वहाँ वे परमारथ के साचे अर्थात् परमार्थ मोक्षमार्ग का उन्हें सच्चा प्रेम होता है। आत्मा की पूर्ण शान्तदशा वह परम पदार्थ है। संसारदशा—विकल्पदशा का नाश होकर निर्विकारी पूर्णानन्द दशा की प्राप्ति वह मोक्षदशा जगत में परम पदार्थ कहा जाता है। सम्यग्दृष्टि हृदय के सच्चे हैं, सत्य वचन बोलते हैं, सच्चे जैनी हैं। देखो, प्रारम्भिक दशा के धर्मात्मा जीव को भी ऐसी अन्तरंगदशा होती है। जिनेन्द्र भगवान के वचनों पर उन्हें अटल विश्वास है।

समस्त नयों के ज्ञाता होने से उनके ज्ञान में किसी भी सम्यक् विवक्षा का विरोध भासित नहीं होता। शरीर एवं एक समय की पर्यायबुद्धि जिनके नहीं होती; जिनको आत्मा का हित ही सिद्धि है। वचनसिद्धि आदि बाह्य सिद्धियाँ प्रगट होती हैं, वह कोई सिद्धि नहीं है। रुपया-पैसा तो जड़-मिट्टी, धूल है; उसे कौन रख सकता है ? और कौन छोड़ सकता है ? मात्र ममता को रखता या छोड़ता है! धर्मात्मा को आत्महित की सिद्धि प्रगट हुई है; आत्मशक्तिरूपी पूर्ण ऋद्धि प्रगट हुई है। परम आनन्द एवं ज्ञानस्वभावी आत्मा की अन्तर प्रतीति होकर जहाँ शुद्धता की वृद्धि होती है और अशुद्धता टलती है, वह वृद्धि है। बाह्य वृद्धि तो पुण्य के रजकण जलने से दिखती है, परन्तु सम्यग्दृष्टि को तो अन्तरंग शान्ति और धर्म की वृद्धि दिखायी देती है। इस प्रकार उसके अन्तर में सिद्धि, ऋद्धि और वृद्धि है। धर्मी तो अन्तरंग लक्ष्मी से अयाची लक्षपति अर्थात् बाह्य वस्तुओं की इच्छा रहित सम्पन्न हैं; अपने आनन्दरूपी गुण-द्रव्य का जिनके लक्ष्य है, ऐसे लक्षपति हैं। वे वीतराग के दास और जगत से उदास हैं। सम्यक्त्वी जीव सदा सुखी हैं, आनन्द में हैं; वे जहाँ हों, वहाँ आत्मा के आनन्द में रहते हैं।—ऐसे गुणों के धारक सम्यग्दृष्टि हैं, उनका स्मरण करके मंगलाचरण किया।

— आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष-38, अंक-5

.....पृष्ठ 13 का शेष

स्वानुभूतिदर्शन : बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

प्रश्न : पूज्य गुरुदेवश्री के वचनामृत में 'ॐ सहज चिदानन्द' आता है, तो उसमें क्या कहना चाहते हैं ?

समाधान— 'ॐ' भगवान की वाणी है। ॐ ध्वनि निरक्षरी होती है। गुरुदेव को जिनवाणी के प्रति अत्यन्त प्रेम था इसलिए उनको 'ॐ सहज चिदानन्द' ऐसा (सहज) आता था। आत्मा सहज चित्स्वरूप आनन्दस्वरूप है; तू ऐसे सहज चिदानन्द आत्मा को पहिचान। वह किससे पहिचाना

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

द्वितीय अधिकार के सार पर प्रवचन

अनन्त शक्ति का नाथ आत्मा पुद्गल को बहुमान देने गया, वहां स्वयं ही लुट गया। उसको पुद्गल की महिमा आती है, उसमें अपनी शक्ति ढ़क जाती है- लुट जाती है। स्वयं ही अपने हाथ से लुटायी है और प्रसन्न होता है। इसको पुद्गल के निमित्त से ही विभाव उत्पन्न होता है। पुण्य-पाप यह विभाव है, यह कोई स्वभाव नहीं है और स्वभाव से उत्पन्न भी नहीं हुए हैं। (जीव) जब कर्म के निमित्त का संग करता है, तभी विभाव उत्पन्न होता है। जैसे - जब अग्नि लोहे का संग करती है, तभी उस पर घन की चोटें पड़ती हैं, अकेली अग्नि को कोई घन नहीं मारता है। उसी प्रकार अकेले जीव को कोई दु:खी नहीं करता है; परन्तु जीव पुण्य-पाप की वृत्तियों में जुड़ता है, तब उसको चार गति के दु:ख की चोट पड़ती है।

अज्ञान के उदय में अज्ञानी इस कर्मरूप पुद्गल के निमित्त से राग-द्वेष करता है अथवा इन पुद्गलों में इष्ट-अनिष्ट कल्पना करता है। शरीर, स्त्री, प्रतिष्ठा इत्यादि को अनुकूल देखकर (मानकर) उनमें इष्ट की कल्पना करता है और प्रतिकूल देखकर अनिष्ट की कल्पना करता है- यह इसकी मूढ़ता है। वस्तुत: वे सब संयोग तो ज्ञेय हैं, ठीक अठीक नहीं। कोई इष्ट-अनिष्ट है ही नहीं। जड़ की अवस्था उसके होने के काल में जैसी होनी हो वैसी ही होती है। तू उसमें कहाँ घुस गया है अथवा वे कहाँ तेरे में आ गये हैं ?

यदि पुद्गल नहीं होता अर्थात् जीव की दृष्टि उस पर नहीं होती, उसमें जीव का जुड़ान नहीं होता तो आत्मा में अन्य वस्तु का सम्बन्ध नहीं होता, उसमें विकार अथवा राग-द्वेष नहीं होता। संसार में जितना नाटक है, वह सब पुद्गल जनित है। पुद्गल नाचता है तो नाचे..मेरा भगवान तो आनन्दस्वरूप है, वह पुद्गल के नाटक में नहीं आता है।

अनन्त शक्ति का नाथ आत्मा पुद्गल को बहुमान देने गया, वहां स्वयं ही लुट गया। उसको पुद्गल की महिमा आती है, उसमें अपनी शक्ति ढ़क जाती है- लुट जाती है। स्वयं ही अपने हाथ से लुटायी है और प्रसन्न होता है। इसको पुद्गल के निमित्त से ही विभाव उत्पन्न होता है। पुण्य-पाप यह विभाव है, यह कोई स्वभाव नहीं है और स्वभाव से उत्पन्न भी नहीं हुए हैं। (जीव) जब कर्म के निमित्त का संग करता है, तभी विभाव उत्पन्न होता है। जैसे - जब अग्नि लोहे का संग करती है, तभी उस पर घन की चोटें पड़ती हैं, अकेली अग्नि को कोई घन नहीं मारता है। उसी प्रकार अकेले जीव को कोई दु:खी नहीं करता है; परन्तु जीव पुण्य-पाप की वृत्तियों में जुड़ता है, तब उसको चार गति के दु:ख की चोट पड़ती है।

अज्ञान के उदय में अज्ञानी इस कर्मरूप पुद्गल के निमित्त से राग-द्वेष करता है अथवा इन पुद्गलों में इष्ट-अनिष्ट कल्पना करता है। शरीर, स्त्री, प्रतिष्ठा इत्यादि को अनुकूल देखकर (मानकर) उनमें इष्ट की कल्पना करता है और प्रतिकूल देखकर अनिष्ट की कल्पना करता है- यह इसकी मूढ़ता है। वस्तुत: वे सब संयोग तो ज्ञेय हैं, ठीक अठीक नहीं। कोई इष्ट-अनिष्ट है ही नहीं। जड़ की अवस्था उसके होने के काल में जैसी होनी हो वैसी ही होती है। तू उसमें कहाँ घुस गया है अथवा वे कहाँ तेरे में आ गये हैं?

यदि पुद्गल नहीं होता अर्थात् जीव की दृष्टि उस पर नहीं होती, उसमें जीव का जुड़ान नहीं होता तो आत्मा में अन्य वस्तु का सम्बन्ध नहीं होता, उसमें विकार अथवा राग-द्वेष नहीं होता। संसार में जितना नाटक है, वह सब पुद्गल जनित है। पुद्गल नाचता है तो नाचे..मेरा भगवान तो आनन्दस्वरूप है, वह पुद्गल के नाटक में नहीं आता है।

यह कहकर मूल तो 'ज्ञाता-दृष्टा' होने को कहा है। 13 वें पद्य में अन्तिम लाइन में आया था कि 'सम्यग्दृष्टि आत्मा नाटक को मात्र देखनेवाला है।' राग हो उसको भी जाननेवाला है, उसको वह निज नहीं

मानता है। द्वेष हो, उसको भी जाननेवाला है, उसको वह निज नहीं मानता है। शरीर सुन्दर हो तो भी जानता है, निज नहीं मानता है और कुरूप शरीर हो तो भी सम्यग्दृष्टि तो मात्र जाननेवाला है। वह किसी को अपना नहीं मानता है। इस प्रकार जो 'जानने-देखनेवाला' रहता है, वह धर्मी है। उसका गमन मुक्ति की ओर है। अन्य जो पर को निज मानता है, उसका गमन तो नरक और निगोद की तरफ है।

शरीर और रागादि आत्मा से भिन्न हैं ऐसा अनुभव करना ही धर्म है।

तुम शरीर को कहाँ से दबाओगे तो तुम्हें ज्ञात होगा कि अपने को दबाया गया हैं, अपने को दु:ख का ज्ञान होता है। बस, यह जानने की शक्ति रखनेवाला जीव है, वही तुम हो। तुम चैतन्य हो, नित्य हो, आत्मा हो। जो जाननेवाला है, वही जीव है। यह जीव नित्य और चैतन्यमय है। इस प्रकार यहाँ आत्म की सिद्धि की।

अब पुद्गल द्रव्य की सिद्धि करते हैं-

आत्मा के सिवाय एक अन्य पदार्थ, जिसको तुमने चिवटी से दबाया है; वह नरम जैसा, कुछ मेला-काले जैसा, खारे जैसा, कुछ सुगन्ध-दुर्गन्धवाला ज्ञात होता है उसको शरीर कहते है। कि जो कि पुद्गल है, जड़ है, अचेतन है, नाशवान है और जीव से पृथक परपदार्थ है।

इसमें नरम जैसा कहकर शरीर का स्पर्श, कुछ मेला-काला कहकर रंग, खारा रस और सुगन्ध-दुर्गन्ध द्वारा गंध गुण बताया है। यह मात्रा भाषा नहीं, वस्तु का स्वरूप है उसे समझाने का हेतु है। जो कुछ भी है, उसे जाननेवाला जीव है और उसके अतिरिक्त स्पर्श, रसादिवाला पदार्थ है वह शरीर है जो कि जड़ है-अचेतन है, नाशवान और पर है। जीव और शरीर का स्वभाव परस्पर विरुद्ध है। आत्मा चेतन है तो शरीर जड़ है। आत्मा नित्य है तो शरीर अनित्य है-नाशवान है। आत्मा स्व है तो शरीर परपदार्थ है।

इस प्रकार आत्मपदार्थ से शरीर भिन्न है। दोनों के पद अर्थात् भाव

न्यारे-न्यारे हैं। तो भी अज्ञानी जीव शरीर से कैसा एकमेक हुआ है कि कोई चिवटी से दबावे तो मानो मैं ही दब रहा हूँ ऐसा इसको लगता है। वस्तुतः जीव दबता नहीं है; परन्तु शरीर को दबने से उसे अरुचिकर होता है। उसका जाननेवाला है, वह आत्मा है। शरीर में कुछ होने पर अरुचि अथवा दुःख होता है; वह आत्मा नहीं, किन्तु उनको जाननेवाला है वह आत्मा है। कारण कि ज्ञानस्वरूपी है वह आत्मा है-ऐसा सिद्ध करना है। दुःख है वह आत्मा का स्वरूप नहीं है।

शरीर में बुखार आवे वहाँ मानता है कि मुझे बुखार आया; परन्तु तुझे कहाँ बुखार आया है? तुझको तो बुखार का ज्ञान हुआ है। वस्तुतः तो पुण्य-पाप भी (आत्मा से) भिन्न वस्तु है। उनको जाननेवाला है, वह चैतन्य आत्मा है। पुण्य-पाप के भाव भी जीव के नहीं है; क्योंकि उनमें जानपने का भाव नहीं है। जिसमें जानने का भाव-गुण हो वह आत्मा है।

यह शरीर जड़ है। इसमें अहंबुद्धि करना अर्थात् शरीर सम्बन्धी धन, स्त्री, पुत्रादिक को अपना मानना मिथ्याज्ञान है, मिथ्यादर्शन है। लक्षण भेद द्वारा निज आत्मा को स्व और आत्मा के सिवाय समस्त चेतन-अचेतन पदार्थों को पर जानना ही भेद-विज्ञान है। राग, शरीर, लक्ष्मी आदि अचेतन और स्त्री, पुत्रादिक का आत्मा चेतन होने पर भी मेरे आत्मा से भिन्न है और भिन्न होकर ही रहा है -ऐसा जानकर राग से भिन्न पड़कर अपने आत्मा में अपनेपने का अनुभव करने का नाम आत्मा का ज्ञान और धर्म कहा जाता है।

लौकिक में बाँझ और अविवाहितों की कोई कीमत नहीं होती, पुत्रादिवालों की ही कीमत होती है कि जिनके पुत्रादिक हैं, उनका ही नाम दुनिया में रहेगा, पुत्र कुल की परम्परा रखेंगे इत्यादि। परन्तु भाई! तेरी आत्मा में स्त्री-पुत्रादिक कुछ है ही नहीं, इसलिए उनसे तेरा नाम रहेगा -यह मान्यता ही झूठ है। जो अपनी वस्तु नहीं है, उसको अपनी मानना तो मूढ़ता और महापाप है।

भाई! यह अलग ही प्रकार का नाटक है। यहाँ कोई भी परद्रव्य तेरा नहीं

आचार्य समन्तभद्र रचित 'स्वयंभूस्तोत्र' का वैशिष्ट्य

— प्रो. वीरसागर जैन

आचार्य समन्तभद्र द्वारा रचित 'स्वयंभूस्तोत्र' या 'बृहत्स्वयंभूस्तोत्र' जैन-स्तुति-साहित्य का एक आदर्श ग्रन्थ है, मानक ग्रन्थ है। स्तुति, स्तुत्य, स्तोता (स्तुतिकर्ता), स्तुतिफल—इन सभी स्तुतिविषयक जिज्ञासाओं के समुचि समाधान हेतु इस एक ही ग्रन्थ का अध्ययन पर्याप्त है।

अधिकांश लोग दार्शनिक ग्रन्थों को गूढ-गम्भीर और स्तुति-साहित्य को एकदम हल्का-फुल्का सरल समझते हैं, परन्तु इस 'स्वयंभूस्तोत्र' को पढ़ने से पता चलता है कि वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। जैन-स्तुति साहित्य को समझना भी कोई बच्चों का खेल नहीं है, उसमें भी गूढ़-गम्भीर दर्शनशास्त्र भरा हुआ होता है। यही कारण है कि 'स्वयंभूस्तोत्र' के संस्कृत टीकाकार आचार्य प्रभाचन्द्र ने इस स्तोत्र को 'निःशेषजिनोक्तधर्मविषयः' अर्थात् 'जिनेन्द्र-कथित सर्व विषयों से भरा हुआ' कहा है। यथा—

यो निःशेषजिनोक्तधर्मविषयः श्रीगौतमाद्यैः कृतः।
सूक्तार्थैरमलैः स्तवोऽयमसमः स्वल्पैः प्रसन्नैः पदैः॥

इससे स्पष्ट है कि जैनदर्शन की सम्पूर्ण वस्तु-व्यवस्था, जिसमें द्रव्य-गुण-पर्याय, प्रमाण-नय-विवेचन, अनेकान्त-स्याद्वाद, अहिंसा आदि सभी सिद्धान्त आ जाते हैं, को समझे बिना जैन-स्तुति-साहित्य को नहीं समझा जा सकता। यहाँ तक कि एक सच्चा स्तुतिकर्ता भी नहीं बना जा सकता। अतएव इस स्वयंभूस्तोत्र को अत्यधिक एकाग्रतापूर्वक पूरा मन लगाकर पढ़ना-समझना बहुत आवश्यक है।

पाठकों को आश्चर्य होगा कि यद्यपि यह एक स्तुति ग्रन्थ है, परन्तु इसमें न तो कहीं कुछ रोने-गिड़गिड़ाने जैसा कुछ है, न कोई याचना-प्रार्थना है न कोई निवेदन-प्रतिवेदन है, न कोई रूठना-मनाना है, न कोई

अभिशाप-आशीर्वाद-वरदान आदि की कोई बात है और न ही कोई सख्य-दास्यादि विविध भावों की उपासना है। और तो और, जिन 24 तीर्थंकरों की इसमें स्तुति की गई है, उनके जीवन की भी इसमें कोई खास जानकारी नहीं है। उनकी जन्मतिथि, जन्मभूमि, चिह्न, वर्ण, गणधर, संहनन, संस्थान, गृह-प्रसंग आदि कुछ भी इसमें नहीं है। मात्र तत्त्वज्ञान ही तत्त्वज्ञान है और मात्र उसी के द्वारा भगवान की अद्‌भुत स्तुति होती चली गई है।

अभिप्राय यही है कि बस एक ही रास्ता है—तत्त्व (वस्तुस्वरूप) को समझो और तदनुरूप आचरण करो, सुखी हो जाओगे, आज तक सब जीव इस उपाय से ही सुखी हुए हैं और आगे भी जो सुखी होंगे वे सब एक इसी उपाय से होंगे। अन्य कोई उपाय नहीं है। सम्भव ही नहीं है। रोने-गिड़गिड़ाने से कुछ होनेवाला नहीं है। कोई किसी को सुख-शान्ति भेंट में नहीं दे सकता। स्वयं पुरुषार्थ करो।

'स्वयंभूस्तोत्र' का तो ना ही अपने अन्दर सम्पूर्ण द्वादशांग का सार समेटे हुए है, जिसे समझने का प्रयास हमें अवश्य करना चाहिए। वैसे तो 'स्वयंभू' शब्द तीर्थंकर का पर्यायवाची है, परन्तु फिर भी इसकी व्यंजना बड़ी गहरी है। यदि 'प्रवचनसार' गाथा 16की भाषा में कहा जाए तो लोक के सभी पदार्थ 'स्वयंभू' हैं। जो 'स्वयंभू' को जान-पहचान लेते हैं, वे स्वयं भी 'स्वयंभू' हो जाते हैं।

'स्वयंभूस्तोत्र' को पढ़कर आचार्य नरेन्द्रसेन (सिद्धारसंग्रह) के कथन का स्मरण हो आता है कि आचार्य समन्तभद्र के वचनों की प्राप्ति मनुष्यभव के समान अत्यन्त दुर्लभ है; क्योंकि दुनिया में अपरम्पार स्तुति-साहित्य है, पर 'स्वयंभूस्तोत्र' तो किसी महाभाग्यशाली विरले जीव को भी मिलता है। हम इस स्वयंभूस्तोत्र को गम्भीरतापूर्वक पढ़ें-समझें और आत्मसात् करें—यही मंगलकामना है।●

हमारे गौरवशाली महापुरुष

निर्लोभी विद्वान और उदार श्रेष्ठी

कविवर पण्डित भागचन्दजी बहुत प्रसिद्ध कवि थे और उनके द्वारा रचित भजन-भक्ति सभी जिनमन्दिरों में लोकप्रिय थे। पर वे बहुत गरीब थे। धन कमाने के लिए उन्होंने अपना गाँव छोड़ दिया और दूसरे नगर पहुँच गए। रास्ते में एक जिनमन्दिर में पूजन-विधान चल रहा था तो वे वहीं बैठ गये और अत्यन्त भक्तिभाव से पूजन की और स्वाध्याय के बाद स्वयं के द्वारा रचित स्तुति गाई। वह पद और सुन्दर स्वर सुनकर लोग वाह-वाह करने लगे। तभी एक श्रोता ने पण्डितजी से कहा — 'यह पद तो पण्डित भागचन्दजी का है। आप उन्हें कैसे जानते हैं ?'

तब पण्डितजी ने कहा कि 'मैं ही पण्डित भागचन्द हूँ।'

यह सुनकर और उनके पुराने से कपड़े देखकर सभी को बड़ा दु:ख हुआ और उनसे आग्रह किया कि 'आप हमारे नगर में ही रुक जाइये और हम सबको धर्म चर्चा सुनाइये, आपकी सारी जिम्मेदारी हमारी होगी।'

तो पण्डितजी बोले—'भाई! धन के लिए प्रवचन करना मुझे शोभा नहीं देता।'

तब लोगों ने आग्रह करके धन उधार देकर उनकी एक दुकान खुलवा दी।

कुछ माह बाद जब पण्डितजी दुकान का सारा काम व्यवस्थित हो गया तो उन्होंने उन साधर्मी का धन वापस करना चाहा तो वे साधर्मी बोले 'पण्डितजी! यह दुकान तो आपकी ही है, ये देखिये इस दुकान के सारे पेपर आपके नाम पर ही हैं।' जब पण्डितजी ने इसे लेने से मना कर दिया तो वे सधर्मी बोले कि 'पण्डितजी! सर्वज्ञ भगवान की वाणी को सुनाने वाले हमें आप जैसे महाविद्वान मिले, यह हमारा सौभाग्य है तो हमारा भी कर्तव्य है कि हम आपको थोड़ा सा सहयोग करें। हमारी विनय स्वीकार कीजिए।'

धन्य हैं ऐसे निर्लोभी विद्वान और उदार श्रेष्ठी।●

बाल वाटिका

प्रेरक प्रसंग

बिना बाँह का कुर्ता

दादा कोण्डदेव शिवाजी के प्रमुख दरबारियों में एक थे। वह शिवाजी के शस्त्र–विद्या के गुरु और सलाहकार भी थे। शिवाजी दादा कोण्डदेव का बहुत सम्मान करते थे। एक बार गर्मी के दिनों में दादा कोण्डदेव दरबार से अपने निवास लोट रहे थे। रास्ता राज–उद्यान से होकर जाता था। उद्यान से गुजरते समय उनकी नजर आमों से लदे पेड़ की ओर गई। रसीले आम देखकर उनका मन ललचा उठा और उन्होंने चटनी के लिए कुछ आम तोड़ लिये। घर ले जाकर उन्होंने पत्नी से उसकी चटनी बनाने के लिए कहा। पत्नी ने पूछा– ये आम आपको कहाँ से मिले?

दादा कोण्डदेव बोले– राज–उद्यान से तोड़े है।

उनकी पत्नी बोली– क्या आपने आम तोड़ने से पहले आज्ञा ली थी? यह सुनकर दादा कोण्डदेव को अपनी भूल का एहसास हुआ। उन्होंने प्रायश्चित्त के लिए अपनी पत्नी की सलाह माँगी तो वह बोली – जो हाथ चोरी के लिए बढ़े उन्हें राष्ट्रहित को देखते हुए काटकर अलग कर देना चाहिए, जिससे यह गलती दोबारा न हो। इतना सुनते ही दादा कोण्डदेव ने घर में रखी तलवार निकाल कर ज्यों ही अपना हाथ काटना चाहा, उनकी पत्नी ने उन्हें पकड़ लिया और बोली– आपके ये हाथ आपके न होकर राष्ट्र के हैं। इन्हें काटकर आप राष्ट्र को नुकसान पहुँचायेंगे। प्रण कीजिए कि आज के बाद इनसे होने वाले सभी कार्य राष्ट्र हित में ही होंगे। इस पर दादा कोण्डदेव बोले– पर यह कैसे पता चलेगा कि इन हाथों ने अपराध किया है। पत्नी बोली– यदि ऐसा है तो कुर्ते की बाँह काटकर प्रायश्चित संभव है। दादा कोण्डदेव ने वैसा ही किया।

अगले दिन जब वे बिना बाँह का कुर्ता पहनकर दरबार गये तो लोगों में हँसी की लहर दौड़ गयी। कारण पूछने पर उन्होंने सारी बात बता दी। इस घटना से सभी दरबारी बहुत प्रभावित हुए। इसके बाद दादा कोण्डदेव ने जीवन भर बाँह वाला कुर्ता नहीं पहना, ताकि इस भूल की याद बराबर बनी रहे और दोबारा ऐसी गलती न हो।

काश! राजनीति / सामाजिक / सार्वजनिक जीवन जीनेवालों मे इसकी आधी भी नैतिकता आ जाये तो भ्रष्टाचार समाप्ति की ओर ही होगा।

शिक्षा– छोटी–सी गलती भी जब अपराध लगे और उसे दूर करने का भाव हो तो ही जीवन पवित्र हो सकता है।

"जिस प्रकार–उसी प्रकार" में छिपा रहस्य

जिस प्रकार– जीभ चाहे जितना चिकना पदार्थ खाये चिकनाहट जीभ पर रूकती नहीं क्योंकि उसका स्वभाव रूखापन है।

उसी प्रकार– आत्मा में कैसा भी राग आ जाये, वह रूकता नहीं, क्योंकि आत्मा वीतराग स्वभावी है। अगर अपने वीतरागी स्वभाव का आश्रय कर ले तो राग द्वेष की उत्पत्ति ही नहीं होती।

जिस प्रकार– कपड़े बदलने से शरीर नहीं बदलता है।

उसी प्रकार– शरीर बदलने से आत्मा नहीं बदलती है।

जिस प्रकार– पहाड़ के जिस पत्थर में प्रतिमा होती है। उसे बनाना नहीं पड़ता उसके आस–पास जो फालूत पत्थर होता है, उसे हटाया जाता है। प्रतिमा प्रगट हो जाती है।

उसी प्रकार– आत्मा में परमात्मा विद्यमान है उसके साथ जो फालतू के भाव कर्म लगे हैं, उन्हें हटाया जाता है तो परमात्मा प्रगट हो जाते हैं। जब दृष्टि आत्मा पर रहती है तो भाव कर्म हटने शुरू हो जाते है।

जिस प्रकार– निर्मल क्षीर समुद्र में निर्मल तरंगे ही उत्पन्न होती है।

उसी प्रकार– शुद्धात्मा में सर्व परिणमन अथवा वर्तन शुद्ध ही होता है।

जिस प्रकार– सुमेरु पर्वत की तलहटी में सुवर्ण भरा है लेकिन वह कभी प्रयोग में नहीं आ सकता है।

उसी प्रकार– अभव्य आत्मा के पास भी अनन्त शक्तियों का भंडार तो है लेकिन वह प्रगट नहीं हो सकती हैं।

जिस प्रकार– अफीम के आदी व्यक्ति को चढ़ा–चढ़ा कहते ही नशा चढ़ता है।

उसी प्रकार– जो आत्मा को साधने के लिए प्रतिबद्ध हुआ है, उसे सन्त आत्मा का उल्लास चढ़ाते हैं। अरे जीव तेरे चैतन्य में अपूर्व सामर्थ्य है, तुझमें केवलज्ञान का भण्डार है, सन्तों का ऐसा नाद सुनते ही मुमुक्षु का आत्मा उल्लास से जाग जाता है।

जिस प्रकार– संयोग के बढ़ने पर कुछ ज्ञान बढ़ता नहीं है।

उसी प्रकार– इन्द्रिय ज्ञान बढ़ने पर किंचित भी आत्मज्ञान नहीं होता। ज्ञान श्रद्धान का पोषक होना चाहिए, घातक नहीं।

जिस प्रकार– सम्यग्दर्शन का विषय ज्ञायक स्वभावी आत्मा ही है।

उसी प्रकार– सम्यग्ज्ञान का विषय भी वही है। सम्यग्दर्शन निर्विकल्प है, अर्थात् उसका विषय अभेद आत्मा है। सम्यग्ज्ञान सविकल्प है वह द्रव्य–गुण–पर्याय को, ज्ञाता–ज्ञान–ज्ञेय को जैसा है, वैसा जानता है।

क्रमशः

संकलन – प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की

समाचार-दर्शन

तीर्थधाम मङ्गलायतन में

महावीर जन्म कल्याणक सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : भगवान महावीर के जन्म कल्याणक के अवसर पर दिनाँक 03 अप्रैल 2023, चैत्र शुक्ल तेरस को तीर्थधाम मङ्गलायतन में भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के छात्रों द्वारा अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ महावीर भगवान के जन्म कल्याणक का आयोजन किया गया। जिसमें प्रात: 06.45 से भगवान महावीर का प्रक्षाल पूजन, प्रभातफेरी, पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी प्रवचन, तत्पश्चात् पण्डित सचिन जैन के द्वारा '**वर्तमान को वर्धमान की आवश्यकता**' विषय पर सारगर्भित व्याख्यान हुआ। दोपहर में बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन द्वारा षट्खण्डागम, धवलाजी की वाँचना का लाभ ऑनलाईन प्राप्त किया।

सायंकालीन कार्यक्रम में महावीर जिनालय में जिनेन्द्र भक्ति, जन्मकल्याणक की बधाई आदि भक्तिगीतों के माध्यम से भक्ति के कार्यक्रम के पश्चात् गोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें मंगलार्थी सिद्धांश, विदिशा; पर्व जैन, प्रशम जैन, सोहम जैन, विराट जैन, तेजस जैन, ध्रुव जैन आदि ने अपना वक्तव्य भगवान महावीर की शिक्षाओं एवं उनके सिद्धान्तों पर दिया। जिसमें सभी मङ्गलार्थी छात्र, तीर्थधाम मंगलायतन परिवार एवं पावना परिवार उपस्थित था।

पूज्य गुरुदेवश्री के 134 वें उपकार दिवस पर

सांस्कृतिक कार्यक्रम सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के छात्रों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के उपकार दिवस 21 अप्रैल 2023 को उत्साहपूर्वक मनाया गया। प्रात: पूजन के पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री का मांगलिक सी.डी. प्रवचन, प्रवचनसार गाथा 240 पर हुआ, तत्पश्चात् डॉ. सचिन्द्र शास्त्री द्वारा गुरुदेव के उपकार बताते हुए स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ।

सायंकालीन कार्यक्रम में जिनेन्द्रभक्ति के पश्चात् '**मिलिये पूज्य गुरुदेवश्री से**' कार्यक्रम जिसकी अध्यक्षता श्री जैनबहादुर जैन, कानपुर ने की। मुख्य अतिथि के रूप में श्री अनिल जैन, पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सुधीर शास्त्री, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री आदि ने अपने वक्तव्य प्रस्तुत किये। मंगलार्थी समकित जैन ने पूज्य गुरुदेवश्री

तीर्थधाम मङ्गलायतन में

महावीर जन्म कल्याणक सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : भगवान महावीर के जन्म कल्याणक के अवसर पर दिनाँक 03 अप्रैल 2023, चैत्र शुक्ल तेरस को तीर्थधाम मङ्गलायतन में भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के छात्रों द्वारा अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ महावीर भगवान के जन्म कल्याणक का आयोजन किया गया। जिसमें प्रात: 06.45 से भगवान महावीर का प्रक्षाल पूजन, प्रभातफेरी, पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी प्रवचन, तत्पश्चात् पण्डित सचिन जैन के द्वारा '**वर्तमान को वर्धमान की आवश्यकता**' विषय पर सारगर्भित व्याख्यान हुआ। दोपहर में बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन द्वारा षट्खण्डागम, धवलाजी की वाँचना का लाभ ऑनलाईन प्राप्त किया।

सायंकालीन कार्यक्रम में महावीर जिनालय में जिनेन्द्र भक्ति, जन्मकल्याणक की बधाई आदि भक्तिगीतों के माध्यम से भक्ति के कार्यक्रम के पश्चात् गोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें मंगलार्थी सिद्धांश, विदिशा; पर्व जैन, प्रशम जैन, सोहम जैन, विराट जैन, तेजस जैन, ध्रुव जैन आदि ने अपना वक्तव्य भगवान महावीर की शिक्षाओं एवं उनके सिद्धान्तों पर दिया। जिसमें सभी मङ्गलार्थी छात्र, तीर्थधाम मंगलायतन परिवार एवं पावना परिवार उपस्थित था।

पूज्य गुरुदेवश्री के 134 वें उपकार दिवस पर

सांस्कृतिक कार्यक्रम सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के

जून 2023 माह के मुख्य जैन तिथि-पर्व

1 जून – ज्येष्ठ शुक्ल 12
श्री सुपार्श्वनाथ जन्म-तप कल्याणक

3 जून – ज्येष्ठ कृष्ण 14 **चतुर्दशी**

9 जून – आषाढ़ कृष्ण 6
श्री वासुपूज्य गर्भ कल्याणक

11 जून – आषाढ़ कृष्ण 8 **अष्टमी**
श्री विमलनाथ मोक्ष कल्याणक

13 जून – आषाढ़ कृष्ण 10
श्री नमिनाथ जन्म-तप कल्याणक

17 जून – आषाढ़ कृष्ण 14 **चतुर्दशी**

24 जून – आषाढ़ शुक्ल 6
श्री महावीर गर्भ कल्याणक

25 जून – आषाढ़ शुक्ल 7
श्री नेमिनाथ मोक्ष कल्याणक

षट्खण्डागम ग्रन्थ की वाचना अनवरत प्रवाहित
नौवीं पुस्तक की वाचना 7 फरवरी 2023 से प्रारम्भ

विद्वत् समागम – आदरणीय बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर एवं सहयोगी भाई-बहिनों तथा मङ्गलायतन परिवार को भी लाभ प्राप्त होता है।

दोपहर 01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन)		**षट्खण्डागम (धवलाजी)**
रात्रि	07.30 से 08.30 बजे तक	मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय
	08.30 से 09.15 बजे तक	**समयसार ग्रन्थाधिराज के कलशों का व्याकरण के नियमानुसार शुद्ध उच्चारण सहित सामान्यार्थ**

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,
Password - tm@4321
youtube channel - theerthdham mangalayatan
के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

नवीन संस्करण का प्रकाशन

तीर्थधाम मङ्गलायतन : साहित्य प्रकाशन की शृंखला में **मङ्गल भक्ति सुमन** का भारी माँग पर पुन:प्रकाशन किया गया है। जिसमें देव-शास्त्र-गुरु को समर्पित अद्वितीय पाँच सौ भक्तियों के संकलन के साथ प्राचीन कवियों के भजन, बड़े पण्डितजी द्वारा रचित आध्यात्मिक पाठों का अनूठा संग्रह का पुन: प्रकाशन किया है। **जिसकी कीमत मात्र 80.00 रुपये है।**

साथ ही दैनिक पूजन-पाठ के संकलन के साथ **मङ्गल अर्चना** का भी पुन: प्रकाशन का कार्य चल रहा है। जिसमें समस्त पूजनों का संग्रह किया जा रहा है।

पुस्तकें सीमित होने से आप अतिशीघ्र अपनी प्रतियाँ सुरक्षित कर लेवें।

सम्पर्कसूत्र–
पण्डित सुधीर शास्त्री, 9756633800
पण्डित अभिषेक शास्त्री, 7610009487
Email : info@mangalayatan.com

तीर्थधाम मङ्गलायतन से प्रकाशित एवं उपलब्ध साहित्य सूची

मूल ग्रन्थ–

1. समयसार वचनिका
2. प्रवचनसार (हिन्दी, अंग्रेजी)
3. नियमसार
4. इष्टोपदेश
5. समाधितंत्र
6. छहढाला (हिन्दी, अंग्रेजी सचित्र)
7. मोक्षमार्ग प्रकाशक
8. समयसार कलश
9. अध्यात्म पंच संग्रह
10. परम अध्यात्म तरंगिणी
11. तत्त्वज्ञान तरंगिणी
12. हरिवंशपुराण वचनिका
13. सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन

1. प्रवचनरत्न चिन्तामणि
2. मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन
3. प्रवचन नवनीत
4. वृहद्द्रव्य संग्रह प्रवचन
5. आत्मसिद्धि पर प्रवचन
6. प्रवचनसुधा
7. समयसार नाटक पर प्रवचन
8. अष्टपाहुड़ प्रवचन
9. विषापहार प्रवचन
10. भक्तामर रहस्य
11. आतम के हित पंथ लाग!
12. स्वतंत्रता की घोषणा
13. पंचकल्याणक प्रवचन
14 मंगल महोत्सव प्रवचन
15. कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन
16. छहढ़ाला प्रवचन
17. पंचकल्याणक क्या, क्यों, कैसे?
18. देखो जी आदीश्वरस्वामी
19. भेदविज्ञानसार
20. दीपावली प्रवचन
21. समयसार सिद्धि
22. आध्यात्मिक सोपान
23. अमृत प्रवचन
24. स्वानुभूति दर्शन
25. साध्य सिद्धि का अचलित मार्ग
26. दशधर्म प्रवचन
27. वह घड़ी कब आयेगी
28. अहो भाव!

पण्डित कैलाशचन्द्रजी का साहित्य

1. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला (भाग 1 से 7) (हिन्दी गुजराती)
2. मंगल समर्पण
3. मंगल पत्रांजलि
4. मंगल संबोधन
5. मंगल दैनन्दिनी
6. मंगल देशना

अन्य

1. फोटो फ्रेम (पूज्य गुरुदेवश्री, बहिनश्री)

2. सी.डी.

3. मंगल भक्ति सुमन
4. मंगल उपासना
5. करणानुयोग प्रवेशिका
6. धन्य मुनिदशा
7. धन्य मुनिराज हमारे हैं!
8. प्रवचनसार अनुशीलन
9. पंडित टोडरमल
10. वस्तुविज्ञानसार
11. अध्यात्मत्रिपाठ संग्रह

बाल साहित्य (कॉमिक्स)

1. कामदेव प्रद्युम्न
2. बलिदान
3. मंगल प्रज्ञा (भाग 1, 2, 3)
4. मंगल शासन (भाग 1, 2)
5. मंगल प्रभावना (भाग 1, 2)

सम्पर्कसूत्र–

पण्डित अभिषेक शास्त्री, मङ्गलायतन 9997996346

Email : info@mangalayatan.com

श्रीमान सद्धर्मानुरागी बन्धुवर,

सादर जयजिनेन्द्र एवं शुद्धात्म सत्कार!

आशा है आराधना-प्रभावनापूर्वक आप सकुशल होंगे।

वीतरागी जिनशासन के गौरवमयी परम्परा के सूत्रधार पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रभावनायोग में निर्मित आपका अपना **तीर्थधाम मङ्गलायतन** बीस वर्षों से, सुचारुरूप से, अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर गतिमान है।

वर्तमान काल की स्थिति को देखते हुए, अब **मङ्गलायतन** का जीर्णोद्धार एवं अनेक प्रभावना के कार्य, जैसे-भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, भोजनशाला, **मङ्गलायतन** पत्रिका प्रकाशन आदि कार्यों को सुचारू रूप से भी व्यवस्था एवं गति प्रदान करना है। यह कार्य आपके सहयोग के बिना, सम्भव नहीं हैं। इसके लिए हमने एक योजना बनायी है, जिसमें आपको एक छोटी राशि प्रतिमाह दानस्वरूप प्रदान करनी होगी। इस योजना का नाम - **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** रखा गया है। हम आपको इस महत्त्वपूर्ण योजना में सम्मानित सदस्य के रूप में शामिल करना चाहते है। **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** में आपको प्रतिमाह, कम से कम मात्र एक हजार रुपये दानस्वरूप देने हैं। (सदस्यता फार्म पृष्ठ 34 पर है।)

भारत सरकार ने मङ्गलायतन को किसी भी रूप में दी जानेवाली प्रत्येक दानराशि पर, आयकर अधिनियम की धारा 80-G के अन्तर्गत छूट प्रदान की है। आप इस महान कार्य में सहभागिता देकर, स्व-पर का उपकार करें।

आप इसमें स्वयं एवं अपने परिवारीजन, इष्टमित्र आदि को भी सदस्य बनने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। साथ ही **तीर्थधाम मङ्गलायतन** द्वारा संचालित होनेवाले कार्यक्रमों में, आपकी सहभागिता, हमें प्राप्त होगी।

आप यथाशीघ्र सपरिवार पधारकर यहाँ विराजित जिनबिम्बों के दर्शन करें एवं यहाँ वीतरागमयी वातावरण का लाभ लेवें - ऐसी हमारी भावना है।

हार्दिक धन्यवाद एवं जयजिनेन्द्र सहित

अजितप्रसाद जैन	**स्वप्निल जैन**	**सुधीर शास्त्री**
अध्यक्ष	महामन्त्री	निदेशक

मङ्गल वात्सल्य-निधि

सदस्यता फार्म

नाम .....

पता .....

..... पिन कोड .....

मोबाइल ..... ई-मेल .....

मैं **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** योजना की सदस्यता स्वीकार करता हूँ और मैं ..... राशि जमा करवाऊँगा / दूँगा।

हस्ताक्षर

''चौथाई ग्रास दान भी अनुकरणीय''

ग्रासस्तदर्धमपि देयमथार्धमेव,
तस्यापि सन्ततमणुव्रतिना यथर्द्धिः।
इच्छानुसाररूपमिह कस्य कदात्र लोके,
द्रव्यं भविष्यति सदुत्तमदानहेतुः॥

अर्थात् गृहस्थियों को अपने धन के अनुसार एक ग्रास अथवा आधा ग्रास अथवा चौथाई ग्रास अवश्य ही दान देना चाहिए। तात्पर्य यह है कि हमें ऐसा नहीं समझना चाहिए कि जब मैं लखपति या करोड़पति हो जाऊँगा, तब दान दूँगा; बल्कि जितना धन हमारे पास है, उसी के अनुसार थोड़ा-बहुत दान अवश्य देना चाहिए। – आचार्य पद्मनन्दि : पद्मनन्दि पञ्चविंशतिका, श्लोक 230

यह राशि आप निम्न प्रकार से हमें भेज सकते हैं –

1. बैंक द्वारा

NAME	:	SHRI ADINATH KUNDKUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST, ALIGARH
BANK NAME	:	PUNJAB NATIONAL BANK
BRANCH	:	RAILWAY ROAD, ALIGARH
A/C. NO.	:	1825000100065332
RTGS/NEFTS IFS CODE	:	PUNB0001000
PAN NO.	:	AABTA0995P

2. Online : http://www.mangalayatan.com/online-donation/

3. ECS : Auto Debit Form के माध्यम से।

UPI
BHIM UPI Payments Accepted at
SHRI ADINATH KUND KUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST

अक्षय तृतीया गोष्ठी में
बोलते मङ्गलार्थी आर्य जैन,
मङ्गलायतन

पूज्य गुरुदेवश्री की
जन्म-जयन्ती मनाते हुए।

विदाई समारोह

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ पर संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के प्राचार्य डॉ. सचिन्द्र शास्त्री विगत पाँच वर्षों से अपनी सेवायें प्रदान कर रहे थे, इनका 30 अप्रैल 2023 को विदाई समारोह मनाया गया। इनका और पूरे परिवार का अंगवस्त्र, शॉल, मङ्गलायतन का चित्र, मोमेंटो आदि से सम्मान किया गया। इस अवसर पर मङ्गलार्थी छात्रों ने एवं पण्डित सुधीर शास्त्री, पण्डित अशोक लुहाड़िया एवं श्री अनिल जैन ने अपने भाव व्यक्त करते हुए आभार व्यक्त किया एवं आपके उज्ज्वल भविष्य की कामना की। इस अवसर पर सभी मङ्गलार्थी छात्र एवं तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार उपस्थित था।

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2021-23

मुनिराज की वाणी में अमृत

साधु-मुनिराज स्वयं ही आनन्द के कर्ता व भोक्ता हैं। उनका अवतार सफल है। मुनिराज का जन्म सफल है, जिन्होंने अनन्त जन्म-मरण को अफल किया है। **भाई! तूने साधुपद का स्वरूप नहीं सुना है। साधु के तो गुणरत्नों का सागर फट पड़ा है।** अहा! मुनियों का वैराग्य भी कैसा है ? सम्पूर्ण जगत से उदास... उदास! कोई वस्तु मेरी नहीं, किसी से मुझे लाभ नहीं, किसी से मैं प्रसन्न नहीं होता, किसी से मैं खिलता या मुरझाता नहीं, दु:खी नहीं होता। ऐसे वैराग्यरस से मुनिराज पूर्ण हैं। **देह में भी वैराग्य दिखता है और मुनिराज की वाणी में तो मानो अमृत ही झरता है। जिन्हें अन्तर में अमृतस्वरूप आत्मा का भान है, उनकी वाणी में भी मानो अमृत ही झरता है।**

(समयसार नाटक प्रवचन, छन्द ५)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक स्वप्निल जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। **सम्पादक :** डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

If undelivered please return to -

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust

Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)

Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22

info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com